भक्ति क्या है

ठाकुर भिम सिंह रचित
मेलबन ओस्ट्रेलिया

भक्ति योग

'भक्ति'

'भक्ति' शब्द का आविर्भाव **'भज'** शब्द से हुआ है जो कि परमात्मा से सम्बंध रखता है । इस से सम्बन्धित शब्द हैं : भजन, अर्चन, अनुराग, प्रेम, प्रीति आदि । भक्ति प्रेम का प्रतीक है जहाँ एक भक्त केवल भगवान को ही अपना सर्वस्व मानता है । ईश्वर के अतिरिक्त दूसरी और कोई आकांक्षा नहीं । भक्त अपने लिये कुछ भी नहीं माँगता है तथा संसारिक पदार्थ उस के लिये तुक्ष हैं । कोई कामना नहीं और न हो कोई मन में इच्छा । किसी से डर या भय नहीं और परमात्मा पर हर पल पूरा भरोसा । एक भक्त के लिये उन के **'इष्टदेव'** का प्रेम एक महान सागर से भी अधिक है । यही एक सच्चे भक्त की पहचान है । इसे कहतें है **"परम प्रेम रूप"** या **प्रेमैस्वरूपा** ।

भक्ति प्रेम के डोर से बंधी हुई होती है । एक भक्त का अबिरल प्रेम अपने परमात्मा क प्रति उनके चरण कमलों से जुड़ा हुआ होता है । परमात्मा के अतिरिक्त भक्त की कोई दूसरी इच्छा नहीं होती । यह प्रेम सच्चा, निस्स्वार्थ, ऐश्वर्य और शुद्ध होता है । इस में तनिक भी सौदा यह मिलावट नहीं होती । यह परम प्रेम का बखान किसी शब्दों से करना ना-मुमकिन ही नहीं एवं बहुत ही कठिन है । इस का अनुभव केवल एक भक्त ही कर सकता है । भक्ति स्वतंत्र है और भाव से ही उमड़ती है जो एक भक्त को परमात्मा से प्रेम की डोर में पिरो देती है ।

ईश्वर से प्रेम कैसे होता है? :- प्रथम परमात्मा में विश्वास जाग्रित होता ह, फिर आकर्षण या खिंचाव, फिर स्नेह और फिर भाव उत्पन होता है । पूज्य भाव उत्पन होने पर संसारिक वस्तुयों से लगाव छूट जाता है । इच्छायें समाप्त हो जाती हैं । केवल परमात्मा ही सब से प्रिये साथी बन जाते हैं । फिर क्या! सारा जगत सत्यं, शिवं, सुंदरम लगने लगता है । परम सुख, परम संतोष और फिर परम शान्ति । बस यही मोक्ष है ।

जब एक भक्त की भक्ति पूर्ण रूप से शुद्ध हो जाती है तब सारे संसारिक पदार्थों एवं भोग की इच्छायें समाप्त हो कर केवल परमात्मा में ही अमर प्रेम हो जाता है । एक मात्र परमात्मा ही सब वस्तुओं में दिखाई देने लगते हैं । जीव-आत्मा और परमात्मा एक सा हो जाते हैं । इस पद को **'शाश्वत पद'**, **'सनातन पद'** या **'तूर्य पद'** भी कहा जाता है । सारा जगत राममय लगने लगता है । कण-कण में एकमात्र परमेश्वर दिखाई देने लगते हैं । ईश्वर एक कल्पवृक्ष के भाँति दृष्यमय हो जाता है । पृथ्वी, आकाश, सूरज, चांद, सितारें, नदियाँ, पहाड़, समुद्र, सागर, जलचर, नभचर और थलचर ये सब परमात्मा के एक विराट स्वरूप सा प्रतीत होता है ।

भक्ति योग

भक्ति के प्रकार

भक्ति कई प्रकार की होती है। पहली श्रेणी में आते हैं "**साकाम**" और "**निष्काम**" भक्ति।
"साकाम भक्ति" कामना या इच्छा पूरी होने के लिये की जाती है। जैसे - कोई धन की प्राप्ति के लिए पूजन, अर्चन, वंदन आदि करते हैं तो कोई मकान, मोटर गाड़ी आदि पाने के लिये। कोई पढ़ाई में सफलता प्राप्त करने के लिये तो कोई विदेश में सिटिज़नशिप पाने के लिये। कोई मान प्रतिष्ठा के लिये तो कोई बीमारी से छुटकारा पाने के लिये।

'निष्काम भक्ति' सकाम भक्ति के विपरीत भाव है। एक भक्त ईश्वर का पूजन, अर्चन वंदन, सबकी सेवा, आत्मनिवेदन आदि सत्त-कर्म बिना फल की इच्छा से करता है। एक भक्त यह सारे कर्म अपना कर्तव्य समझ कर पूरे नियम और संयम से निभाता है। ईश्वर ने सर्वश्रेष्ठ तन दिया है जिसे देवता भी दुर्लभ मानते ह। हाथ-पांव, आँख-कान वा पूरा शरीर हष्ठ-पुष्ठ है, पढ़ाई के साथ-साथ अच्छी नौकरी भी पास है ,घर-द्वार, पतनी, बाल-बच्चे यह सब कुछ तो है, फिर और कैसी कामना ? अच्छे कर्मों के फल स्वरूप, परमात्मा ने आज हमें सारे संसारिक पदार्थ दिये हैं। कितनों के पास तो कुछ भी नहीं है, इसलिये जो परमात्मा से सहज में मिला है उसे उसी प्रकार गरीबों में, दीन-दुखियों में, अनाथों में, पाठशालाओं में, मंदिर और धार्मिक कार्यों में तथा हर एक सामाजिक कार्यों में ही खर्च करते रहना चाहिये। एक निष्काम कर्मयोगीके लिये यह पहली सीढ़ी है। इस प्रकार धीरे-धीरे निष्कामता दृढ़ होती जायेगी और भक्त संसार के वंधनों से वैराग की ओर बड़ता चला जायगा। निष्काम भक्ति में फल की कामना नहीं रहती। कर्मों के फल का त्याग या सारे कर्मों और उस के फलों को परमात्मा को अर्पन कर देना ही निष्काम भक्ति है।

दूसरी श्रेणी की भक्ति को "**अपरा**" और "**परा**" भक्ति कहते हैं। अपरा भक्ति में एक भक्त साकाम भाव से पूजन, अर्चन, वंदन आदि लगन के साथ करता है और धीरे-धीरे उस का प्रेम ईश्वर के प्रति दृढ़ होता चला जाता है। गुरुदेव की कृपा से उस की साधना सफल हो जाती है और भक्त संसारिक वंधनों से छूट जाता है। उसे भगवान सब जगह दिखाई देने लगते हैं।

तीसरी श्रेणी की भक्ति को '**गौन**" और '**मुख्य**' कहे जाते हैं। इन में भी सफलता साधना करने से मिलती है। साधक मन लगा कर गुरु या ज्ञानी संत के द्वारा अपनी "गौन" अवस्था से धीरे-धीरे "मुख्य भक्ति" को प्राप्त कर लेता है। गौन अवस्था में साधक एक कदम से दूसरे, दूसरे से तीसरे धीरे-धीरे अपनी साधना में सफल हो जाता है। राम को पाने के लिये काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ और मत्सरता को त्यागना होगा। काम है तो राम नहीं, राम हैं तो काम नही।

भक्ति योग

भक्ति को कैसे प्राप्त की जाए

भक्ति को सिर्फ मनोभाव या भावावेश अवस्था नहीं समझनी चाहिए क्योंकि इसे प्राप्त करने के लिये कठिन अनुशासण और मर्यादा का पालन करना पड़ता है । साधक को अपने इन्द्रियों और मन को वश में करने के लिये कठिन साधना करनी पड़ती है । संसारिक सुखों को नाशवान और क्षणभंगुर समझ कर उन से नाता तोड़ कर परम सुखमय, आनन्दमय और परमपद की कामना करनी चाहिए ।
भक्ति को प्राप्त करने के लिये ग्याराह महत्वपूर्ण रासतें बताये गए हैं ।
यह निम्न हैं :- (१). ईश्वर को पल-पल याद करने का **अभ्यास** । (२). बुद्धि के नेत्रों से सूझना - "**विवेक**" । (३). "**एकांत**"-भगवान को छोड़ कर और कोई वस्तु की कामना नहीं । (४). **सत्य** बोलना । (५). "**सरल स्वभाव वाला**" होना । (६). '**सत्य-कर्मी**" होना । (७). **कल्याण** करना । (८). **दया** करना । (९). **अहिंसा** धर्म का पालन करना । (१०). **दान** देना । (११). हमेशा **प्रसन्न** या आशावादी रहना ।

सामान्य वेक्ति प्रश्न करते हैं कि जिन भगवान को हम ने कभी देखा नहीं, उनकी भक्ति कैसे की जाए ?

उत्तर ह :-
साधू और संतो की संगति में रह कर, उनके द्वारा कीर्तन-भजन गुनन, मनन, श्र्वण ,कीर्तन करने से और उन की सेवा एक दास के भाति करने से, धीरे-धीरे भावनाओं में स्वयं परिवर्तन होने लगेंगे । समाज सेवा, दीन-गरीब ओर दुखियों की सेवा से मन निर्मल होने लगता है । सब का आदर करने से और स्वयं छोटा बने रहने से अहंकार और विकार सब छूट जाते हैं । हर एक वह कर्म करें जिस से मन पवित्र होए । समय पर जागें, समय पर सोएं, स्नान आदि कर के सूर्य उदय होने से पूर्व इष्टदेव को अर्ग देवें और धूप, दीप, चन्दन आदि से उनका पूजन करें, अहिंसा ब्रत का पालन करें, न्यायकारी बने, साफ कपड़े पहने, घर, द्वार, मंदिर की साफ-सफाई में मगन रहे और हर तरह से सत्तकर्मों को करने के लिये आज्ञा पालन से कभी न विमुख या बिचल्ति होए ।
हर वक्त चलते-फिरते, जागते-सोते, उठते-बैठते, या किसी भी कर्म को करते समय ईश्वर के नाम का जप लगा रहे । जब कुछ समय मिले तब एकांत में बैठ कर माला से विधिवत्त नाम का जाप वा स्मरण करे । मनुष्य जीवन का कल्याण करेक योंकि यही मोक्ष की सीढ़ी है । क्या जाने फिर मिले यह न मिले । अगर इसे संवारा नहीं तो चोरासी लाख का चक्कर काटना पड़ सकता है । ऊपर कहे गए सारे कर्मो को करने से मन पवित्र और निर्मल होता है । सारे संसार से वैरभाव छूट कर मित्रता और प्रेम की भावना जाग्रित होती है । फिर जब प्रेम दृढ़ होजाए तो भक्ति स्वयं खिंची चली आती है । जब भक्ति मिल जाती है तब भगवान भक्त के वश में हो जाते हैं ।

भक्ति योग

भक्ति के भाव

जब एक साधक अपनी साधना में डूब जाता है, तब उसे अपने सुध-बुध की याद नहीं रहती। इस अवसथा को "**भाव**" कहते हैं। भाव एक भक्त को ईश्वर से सम्बंध जोड़ देता है। धीरे-धीरे यही भाव "**महा-भाव**" में परिवर्तित हो जाता है जो आत्मा को परमात्मा में लीन कर देता है। इस को '**परम-प्रेम**' कहते हैं।

भक्ति में पाँच प्रकार के भाव होते हैं, जैसे - "**शान्त-भाव**", '**दास्यभाव**', "**सखा-भाव**", '**वातसल्य-भाव**" और "**माधुर्य-भाव**"। भाव या स्वभाव इन्सान के जनम के साथ जुड़े होते हैं। जनम जनम के संगत, आदत्तें और कर्मो के परिणाम होते हैं। जो प्राणी अच्छे संगत, अच्छे कर्म, अच्छी आदत्त और अच्छे रास्ते पर चलते आयें हो, उस की भावना स्वमं ही अच्छी होती है। शान्त भाव वाला प्राणी बाकी के चार भावों को सहज में पा लेता है।

शान्त भाव में प्राणी का चित हमेशा शान्त रहता है। वह सुख और दुख दोनो में सामान्य रहता है। हर्ष-विशाद जेसी अवस्थायें उसे नहो व्याप्ति। वह सदा आन्नदमय शान्त-चित वाला होता है।

दास-भाव वाला प्राणी सेवा को अपना परम कर्त्वय समझता हुआ, अपने स्वामी की सेवा में अपना सर्वस्व अर्पन कर देता है। श्रीहनुमानजी दास-भक्ति में सब से ऊपर माने जाते हैं। श्रीरामजी की सेवा से बढ़ कर उन के लिये और कुछ नहीं था।

सखा-भाव में साधक अपने स्वामी के प्रति परम मित्र का स्थान समझता है। इस भक्ति की पहचान करने के लिये अर्जुन और श्रीकृष्णजी का प्रेम को समझो। सखा भक्ति की महिमा श्रीकृषण के प्रति उध्व जी की भी थी।

वातसल्य-भाव में भक्त अपने प्रभू को अपने संतान की तरह देखता है, जैसे - यशोदा मइया कृषण के प्रति और, कौशल्या माता राम के प्रति। इस भाव में ममता अधिक होती है इसलिये माँ की ममता को मोह से नहीं तुलना करनी चाहिये।

माधुर्य-भाव एक प्रेमी और प्रेमिका की तरह होती है। पर इस में विकार तनिक भी नहीं होता है। यह संसारिक प्रेम के रिश्तों से बहुत ही ऊपर है जहाँ काम और वासना का कोई सम्बन्ध नहीं होता। तामसी और राजसी भाव तनिक भी नहीं होते हैं। सिर्फ सात्विक गुण और भावनायें ही रहती हैं। स्वार्थ का कोई चिह्न नहीं दिखाई देगा। मीरा, राधा, ग्वाल और गोपियाँ, ये सब बड़े सुन्दर उदाहरण हैं।

भक्ति योग

नौधा भक्ति

श्रीमद्भागवतम महापुराण के अंतरगत नौधा भक्ति इस प्रकार है :-

१. श्रवण - **श्रवण** भक्ति क्या है और किसे कहा जाता है ?. **श्रवण** भक्ति श्रीभगवान के नाम स्वरूप, गुन और लीलाओं का प्रभाव सहित प्रेम पुर्वक राजा परिक्षत की भाँति श्रीसुकदेव मुनि से कथा सुनने का नाम ही श्रवण भक्ति है। कथा सुनते समय मन कथा में एक दम रम जाना चाहिये और समय कैसे बीत जाय, इस का कोई खबर नहीं होना चाहिये। बलिक आप को ऐसा प्रतीत होना चाहिये की कथा तो अभी-अभी सुरु हुई थी। जब कथा की समाप्ति का समय आय तो मन खिन्न सा हो जाय और मछली की भाति छटपटाने या तड़पने लगे जैसे बाँस के खम्भे में धुन्धकारी की आत्मा को होती थी। धुन्थकारी की आत्मा जो पहले दिन से ले कर सावे दिन तक सप्ताह परायण की बिद्धि को शर्वण किया था वह हर दिन के बीस घन्टों की कथा के पस्चात बाकी के चार घन्टे जो विश्राम के लिये निर्धारित किये गये थे उस को तटप तटप कर काटता था। वह इस लिये कि विश्राम के चार घन्टे उस के लिये कल्पों के समान व्यतीत हो रहा था। गोस्वामीजी भी रामचरितमानस में एक बहुत ही सुन्दर चौपाई को लिखे हैं। अयोध्याकाण्ड में जब श्रीरामजी बालमीकि के आश्रम में गये और उन से अपने रहने का स्थान को पूछा, तब बालमीकि मुनि ने चौदा स्थानों में से सब से प्रथम स्थाम ये कहें किः

"जिन के श्रवण समुद्र समाना, कथा तुम्हार सुभग सरि नाना।
भरे निरन्तर होय न पूरे, तिन केहिये तुम रहो ग्रह रुरे॥

अर्थात जैसे हजारो नदियों और जलाशयों के जल जो समुद्र अथवा सागर में बेह कर जाता है उसे सागर अपने में लीन करता रहता है पर कभी भी उफलाता नहीं, अर्थात अपनी मर्यादा का उलंघन कभी भी नही करता। इसी भाति श्रवण भक्ति में खोया हुआ व्यक्ति कथा को सुनने से कभी नहीं अघाता और हर पर कथा को सुनने का इच्छुक रहता है। जब जब कथा का विश्राम होता है तब तब ऐसा व्यक्ति पानी के बिना मछली की भाँति छटपटाने लगते है। दूसरे दिन की कथा या कथा फिर कब होगी, उस के लिये मन पागलों की तरह प्रतिक्षा या चिन्ता में बेचैन हो रहा हो। इसलिये कथा को सुनते समय मन को एकाग्राह कर के पूरे लगन और भाव सहित कथा को सुनना चाहिये।
भाव से श्रवण करने पर चित की सुद्य भी नहीं रहती। ऐसे भक्त को दिन हो या रात, जागता हो या सोता, हर पल परमात्मा ही दिखाई देते हैं।

श्रोता को श्रवण भक्ति में आकर्शित करने के लिये श्रेष्ठ, गुणवान, ज्ञानी, पंडित और विद्वान वक्ता का होना बहुत ही आवश्यक है। वक्ता अगर श्रोता को कथा श्रवण कराने में उन्हें भावविभोर नहीं कर सकता हो तो श्रवण भक्ति नहीं प्राप्त किया जा सकता है। वक्ता अगर ऐसा हो जो श्रोता के चित और ध्यान को कथा के

अतिरिक्त और कहीं न होने दे तो वक्ता अपने कर्म में अति सफल माना जाता है क्योंकि वह श्रोता को श्रवण भक्ति के मार्ग पर अग्रसित कर देता है। ऐसे ही वक्ता को संत, महात्मा, पंडित, विद्वाव, श्रेष्ठ और योगी कहा जाता है।
स्वयं की पढ़ाई से प्रश्नों के सही उत्तर ना मिलने से भक्त संका में पड़ जाता है। वक्ता अगर गुणवान न हो तो श्रोता को न तो आनन्द दे पायेगा और न ही उन्हें कथा में आकर्शित कर पायेगा। तो फिर सुनने से जीवन पर कोइ लाभ भी नहीं होगा और हम भक्ति से वन्चित रह जायेंगे।
गोस्वामी जी तो भी यही रामचरित्रमानस में कहे हैं कि - "दूसरि रति मम कथा प्रसंगा" अर्थात् कथा में मन लगे।
अर्थात कथा में एक दम रत हो जाना तथा श्रद्धा और भावविभोर हो कर मन को कथा में तल्लीन कर देना।

२. कीर्तन - श्री सुकदेवजी और देवऋृषि नारद की भांति वाणी से उचारण करना यह दूसरों के प्रति कथा कहने का नाम कीर्तन भक्ति है। भगवान के गुणगान, भजन, संकीर्तन आदि को प्रेम सहित भावविभोर हो कर करना। सोते-जागते, खाते-पीते, कर्म करते अथवा हर समय निष्कपट भाव से अपने इष्टदेव के नाम की रटन बन रहनी चाहिये।
आधुनिक जमाने में तो भजन कीर्तन बस एक कला दिखाने वाला पेशा ही बन गया है। नशीली पदार्तों के सेवन जैसे भांग, तम्बाकू और नगोना आदि के सेवन के बहाने सतसंग का नाम बदनाम किया जाता है। भक्तिभाव में मादक विषियों का सेवन कदाचित नहीं करना चाहिये। कीर्तन भजन को छल कपट तथा शारिरिक सुख सम्बंधित अनित्य और नाशवान पदार्थों का सेवन के साथ कदाचित नहीं करना चाहिये क्योंकि यह तामसी भक्ति कही जायगी। तामसी भक्ति से परमात्मा कभी भी नहीं रीझते हैं। वे तो केवल सातव्कि भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं। भजन कीर्तन को भाव विभोर हो कर करना चाहिये जिस से चित पर असर हो न कि नाशवान शरीर पर। नगोना आदि तो चित और शरीर दोनो का नाश करते हैं। कीर्तन करे तो काकभुसुन्डीजी की तरह जो पक्षियों का राजा गरुड़, स्वंग के सभी देवता तथा शीवजी जैसे माहा तपसवी को भी अपनी कथा कीर्तन सुनने को मजबूर कर दे। कीर्तन करे तो वेसे जैसे श्री सुकदेव मुनि जिन्हों ने सात दिन में राजा परिक्षित को परमधाम पहुँचा दिया। और कीर्तन करे तो वैसे जैसे गोकर्ण ने अपने भाई धुन्धकारी की भटकती हुई आत्मा को मोक्ष दिला दिया। और बहुत से अन्य महापुरुष हैं जिन्हों ने कीर्तन भक्ति में अति आदरनिय स्थान को प्राप्त किया है जैसे यकवल्भजी, सूतजी, जगत गुरू भगवाल सदाशिव आदि।

गोस्वामीजी ने भी रामचरित्र मानस में यही लिखा है अर्थात्- "चौथी भक्ति मम गुणगन, करे कपट तजि गान"

भक्ति योग

३. स्मरण - ध्रुव तथा प्रहलाद की भाँति मन में भगवन नाम का चिन्तन करने का नाम स्मरण भक्ति है। योगाभयास और साधना में मन लीन हो जाना और शरीर के सुध को भी भूल जाना। जैसे प्रह्लाद जी "श्रीहरि", "श्रीहरि" पुकारा करते थे , **और** धुरूजी "ॐ नमो भगवते वासुदेवाये" मन्त्र का जप में डूबे हुये थे।

रामचरित्रमानस गोस्वामीजी भी स्मरण भक्ति के ऊपर लिखते हैं

- "मंत्र जाप मम दृढ़ विश्वासा। पंचम भजन जो वेद प्रकाशा"

स्मरण भक्ति में सब से ऊपर श्री हनुमानजी का नाम हमेशा आता है। उन के मुख पर राम का नाम पल पल, क्षण क्षण रहता है। उन के तो रोम रोम भी राम के नाम से बने हैं। इस विषय में मेरी एक अग्रह आप सबो से है कि आप भी राम राम कम से कम एक हजार बार नित्य जपा करो जिस के फल स्वरूप आप भी स्मरण भक्ति के अधिकारी बन जाओगे।

४. पाद सेवन - प्रभू के चरनो की सेवा करना ही पाद सेवन है। और उसे इस भांति करना जैसे भरतजी और माता लक्ष्मीजी ने किये हैं। इस प्रकार की सेवा को "पाद सेवन" कहा जाता है। तो हमारे लिये एक प्रशन उठता है कि भरतजी और माता लक्ष्मीजी के पास तो प्रभू हमेशा होते थे और होते रहेंगे, पर क्योंकि हम भगवान का सक्षात दर्शण नहीं कर पाते हैं तो फिर उन की सेवा किस भाँति की जाये ? । कथायों के माधयम से हमे यह सिक्षा मिलती है कि हम, माता-शबरी की तरह भगवान की प्रतिमा का पूजन कर के उन्हे उसी भाँति प्रसन्न कर सकते हैं जैसे उन्हें प्रतियक्ष रूप में पूजा कर के रिझाया जाता है।

रामचरित्रमानस में गोस्वामीजी ने कहा है कि- "गुरू पद पंकज सेवा, तीसरि भक्ति अमान ....." अर्थात गुरू के चरण कमल की सेवा ही तीसरी भक्ति है।

अब चलो तो देखे कि गुरू कौन है ? हमारे सदग्रन्थो के आधार पर प्रथम गुरू हमारे इष्टदेव हैं जिन के बारे में हम ऊपर कह चुके हैं। पर भगवान ने स्वयम माता पिता को ही प्रथम गुरू बताये हैं क्योंकि माता और पिता तो साक्षात प्रत्यक्ष रूप में हमारे सामने रहते हैं। तो फिर इन की सेवा से बड़ कर और क्या हो सकती है ?

बहुत से सद्ग्रन्थो न भगवान, गुरू और संत को समान बताये हैं, पर गोस्वामीजी के रामचरितमानस के आधार पर प्रभू राम ने सातवी भक्ति में संत को अपने से भी महान बतायें हैं "**मोत संत अधिक करि लेख**" ।

भगवान कहते हैं कि मुझे पाने के लिये, इन की सहारे की अवश्यकता होती है। अगर ये न होते तो तुम मुझे नहीं पा सकते। यही बात कबीर साहेब ने अपनी ब ाणी में अध्यातम विद्या देने वाले गुरू को ही सब से ऊँचा स्थान दिया है :-

वे लिखते हैं किः

भक्ति योग

गुरु गोबिन्द दोउ खड़े, काके लागूं पांये ।
बलिहारी गुरु आपने, जो गोबिन्द दिया मिलाये ॥

ब्रम्वैवर्तपुराण में परमात्मा श्रीकृषण ने अर्जुन से बोले कि "हे अर्जुन ! एक पुत्र के लिये उस का पिता मुझ से दस गुना बड़ा है और उस की माता सौ गुना । तो इस हिसाब से तो हमारे जीवन में माता पिता और अपने गुरु की सेवा से बढ़ कर और क्या हो सकता है । इन्हें ही भगवान का स्वरूप समझ कर इन्हीं की भरपूर सेवा भगवान की चरण सेवा हो जायेगी ।

माता पिता के बाद दूसरे पद् पर वह गुरु आता है जो हमें अध्यातम विद्या का ज्ञान देता है । कलयुग में ऐसे महात्मा को पाना बहुत ही कठिन है । गुरु बस एक नाम मात्र ही रह गया है । आधुनिक गुरु तो शिष्य को कान में गुरु मन्त्र देने के अलावे दूसरे और कर्म को नहीं निभा पाते हैं । गुरु का कर्तव्य है कि वह अपने शिष्य को सारे **रंग-रेज** से निपुन और सक्षम बना दे । रंग रेज में पूरी अध्यातम विद्या तथा अस्टागंयोग के सारे गुण और धर्म को शिष्य पर भली भाँति डालना अति आवश्यक है । ऐसा नहीं करने से गुरु अपने धर्म, कर्म, मर्यादा तथा फर्ज से बिमुख माना जाता है ।

जब एक शिष्य और गुरु का नाता बन जाता है तब गुरु का कर्तव्य शिष्य से कहीं अधिक होता है । कबीरजी ने अपने दोहावली में एक बड़ी सुन्दर दोहा रचे हैं जो इस प्रकार है :

" गुरु तो ऐसा चाहिये जो शिष्य को सब कुछ दे और शिष्य से कछु न ले"

शिष्य चाहे कुछ दे या ना दे, पर गुरु को अपने कर्तव्य से कभी भी बिमुख नहीं होना चाहिये । अध्यातम विद्या में गुरु को धर्म के सारे तीसो लक्षण तथा अस्टांगयोग की सारी वेवस्थायों को भली भाँती अपने शिष्य पर निछावर करनी चाहिये ।
संछेप में धर्म के मुख्य दस लक्षण हैं **"धी, घृति, क्षमा, अहिंसा, दम, इन्द्रियाँनिग्रह, शौच, विद्या, अक्रोध और अत्सय ।** अस्टांगयोग हैं **यम, नीयम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधी ।**

अध्यातम विद्या से ही गुरु अपने चेले को सक्षम और उस योग बनाता है जिस से उस का चेला इस अथाह भवसागर को सुगमता से पार कर जाए । इसी कारण **अध्यातम विद्या देने वाले गुरु को माता पिता के बाद तीसरा स्थान को दिया गया है । गुरु-मन्त्र तथा अध्यातम विद्या देने वाले गुरु पर चेले का पूरा भार होता है, इस लिये अपने कर्तव्य से बिमुख हुआ गुरु बहुत बड़ा पाप का भागीदार होता है ।**

इस कारण हमें अपने अध्यातम सिक्षा देने वाले गुरु को तलाश करनी चाहिये जहाँ हमें अस्टांग योग की सिक्षा भी मिल सके । ऐसे ही गुरु के आश्रम से हमें गुरु शिक्षा में वह सारे गुण जैसे क्षमा, शीलता, सज्जनता, संतोश, परदोश का अभाव, सरलता, निशकपता और निक्षलता आदि गुण भी प्राप्त हो जायेगे जो गोस्वामीजी ने छठी, आठवी और नवी भक्ति के अंतरगत् **रामचरित्रमानस कहे हैं ।**

भक्ति योग

अब चलो देखे कि कौन गुरू कौस सा स्थान पर होता है ।
पहला स्थान परमात्मा का, दूसरा माता-पिता और तीसरा गुरू-मन्त्र तथा अध्यातम विद्या देने वाले गुरू का होता है । वह इसलिये कि अध्यातम विद्या देने वाले गुरू तो भवसागर से पार कराने के लिये चेले को सक्षम बनाता है और परमात्मा से भी मिलवा देता है पर समय समय पर कोप भी कर बैठता है और शिष्य को शाप भी दे देता है जैसे लोमष ऋषि ने काकभुशुंडि को मनुष्य से कौआ बना दिया, जैसे परशुरामजी ने करण को बिना सोचे विचारे गोर शाप दे दिया, और जैसे गुरू द्रोणाचारिये ने गुरू दक्षिना माँग कर एकलव्य की अगुंठा कटवा लिया जब कि वे तो एकलव्य को कोई शिक्षा और दिक्षा भी गुरू से नहीं दिये थे ।
माता-पिता अध्यातम विद्या देने वाले गुरू से ऊपर इसलिये बताये गये हैं क्योंकि वे अपने संतान को कभी भी शापित नहीं करते भले संतान बुरी से बुरी हरकत कियुं न कर दे । वे तो संतान के लिये अपने जीवन को भी दाव पे लगा देते हैं । इस से भी महत्यपूर्ण बात एक और है कि माता-पिता से ही जीव मनुष्य यौनि को प्राप्त करता है, जो कि मोक्ष की सीढ़ी है । तो मुक्ति की सीढ़ी जैसा शरीर को देने वाले, तथा जो शरीर देवताओं को भी दुर्लभ है, उसे प्रदान करने वामे माता-पिता को स्वंम परमात्मा भी उन के आगे झुक जाते हैं । इसीलिये तो श्रीकृष्णजी ने अर्जुन से ऊपर कहे हुये बातों को कहे हैं ।

परमात्मा सब से बड़े गुरू हैं वह इसलिये कि वे किसी भी परिस्थिति में अपने शरणागतियों को तिन्का भर भी चोट या दुख को नहीं आने देते हैं । एक बार जो कोई उन के शरण में चला गया तो फिर सारा जगत परमआनन्दमय हो जाता है । इसिलिये वे जगत गुरू कहलाते हैं अर्थात " श्री कृष्नम बन्दे जगत गुरू " ।

रामचरितमानस में गोस्वामीजी ने एक बहुत ही सुन्दर चौपाई लिखि है जो इस प्रकार है "उमा राम सम गुरू जग माही, गुरू पितु मात बन्धु कोउ नाहीं" अर्थात् गुरू, माता-पिता, भाई बन्धु, सखा आदि ये सब अन्त समय में साथ छोड़ देगे, पर जो हमेशा साथ देता है वही अंत समय में भी सात देगा । इसी लिये उन्हीं परमात्मा का ध्यान हमेशा करना चाहिये क्योंकि अगर अंत समय में आप का ध्यान उन से लग गया तो सीधे मुक्ति मिल जायगी । एक बा अपने को उन के हवाले कर के तो परख लो भइया, फिर सारा झन्झट ही मिट जायेगा ।

धर्म और अस्टांगयोग पर एक अलग प्रवचन तैआर किया गया है जिसे आप भविष्य के प्रसार में सुन सकेगे इसलिये आज की इस गुरू सम्बन्धी प्रचार पर बस इतनी ही बातें अवश्यक है ।

भक्ति योग

५. दास भाव -

श्री हनुमाजी और लक्षमणजी के भाँति दास भाव से आज्ञा का पालन करने का नाम दास भक्ति है । इस कलियुग में भगवान का प्रत्यक्ष दर्शण होना अस्मभव है, इस लिये हमें शासत्रों के अनुकूल कर्मों को भगवान के आदेश समझ कर उनें पालन करते रहना चाहिये । माता पिता, संतो और गुरूजनो में भगवान को देखना और उन की आज्ञा का पालन करना क्योंकि माता पिता की आज्ञा का उल्गंन करना बहुत बड़ा अपराध है जिसे स्वयं भगवान भी नहीं सह सकते ।
जब सारा जगत ईश्वरमय दीखने लगे तब सब की सेवा भगवान की सेवा ही होगी । " सिया-राममय सब जग जानी" समझ कर गरीबों की सेवा में लग रहो ।
साधू-संतो की सेवा, दीन-दुखियों की सेवा, अनाथो को सेवा, गाय की सेवा, मंदिर की साफ-सफाई, पीपल, आम, केला, वेलपत्र, तुलसी आदि पेडों मे जल सींचना, पक्षियोंको दाना देना, यह सब प्रभू की ही तो सेवा है । लक्षमणजी ने चौदाह वर्षतक श्रीरामजी की सेवा में सोये तक नकीं । यह दास सेवा की असीम सथर है जिस की तुलना किसी ओर स नहीं की सकती । दूसरे तरफ श्री हनुमान जी हैं जो श्रीरामजी से ऐसा वदान माँगे कि वे उन के पास से कभी भी ालग न रहें जिस से उन की सेवा में किसी प्रकार का विलम्ब न हो ।

६. सखा भाव

कुबेर से शिवजी का सखा भाव ।
अर्जुन, उद्दव, भील गुह , वानरों के राजा सग्रीव और विभीषण की भांति सखा भाव से प्रभू के दिखाये गये रासते पर चलना ही सखा भक्ति है ।
हम सब जब अकेले में भगवान के सामने बैठ कर उन से प्राथना करते हैं, तो हम भी भगवान को अपने सखा ही के रूप में पाते हैं और सब सच्च उगल देते है । हम तो प्राथना में भी बोलते हैं कि **"त्वमे हो माता च पिता त्वमे हो, त्वमे हो बन्धु च सखा त्वमे हो, त्वमे हो विद्या द्रविनम त्वमे हो, त्वमे हो सर्वम मम देवदेवः ।**
सखा और मित्र का सम्बन्ध एक सागर की भाँति गहरा होता है । इस बात को **रामचरित्रमानस के अंतरगत्** श्रीरामजी ने सुग्रीवजी को बहुत अच्छी प्रकार से किसकिन्दाकाण्ड में बतलाय थे । अर्थात :
जे न मित्र दुख होये दुखारी । तिन्हींबिलोकत पातक भारी ॥
निज दुख गिरी सम रज करि जाना । मित्रक रज दुख मेरु समाना ॥
इस चौपाई से ले कर अगले चौथे चौपाई तक प्रभू ने सखा के प्रति कैसा बैवहार होनी चाहिये, इस का उल्ले बड़ी बारीकि से किये हैं जिस को आप पड़ सकते हो ।

यहाँ कौन भक्त भगवान से किस तरह बातें करता है, यह तो वही जाने । लालची तो भगवान को भी ठगता है पर सच्चा सखा तो अपने सारे करमो को भगवान को अर्पन कर देता है । भगवान से वह "तुम" कह कर बातें करता है, कोइ दूरियाँ नहीं रखता । सारे प्रानी मात्र मे भगवान को देखो और सखा के रूप में भगवान को पहचानो ॥

भक्ति योग

७. निबेदन भाव

राजा बली के भाँति सर्वस्व अर्पन कर देना ही का नाम है निवेदन भक्ति । इस भक्ति में भक्त अपना सब कुछ ईश्वर के हवाले कर देता है । अपने को भूल जाता है कि वह कौन है और समझता है कि वह भगवान का ही एक अंग है । उसे कोई चिन्ता नहीं रहता । उस के लिये संसार में सब कुछ ईश्वर का ही स्वरूप हैं ।
उसे परम सत्य का ज्ञान हो जाता है । यह अवस्था सब से ऊँची बताई गई है । साधारण बेक्ति लालची होने के कारन इस भक्ति से वंचित रह जाता है । हम सब कहते हैं **"तेरा तुझ को अर्पन क्या लागे है मोर"** पर शायद लाखों में किसि एक में यह योगता होगी कि वह अपनी नीजी वस्तुओं को सचमुच में ये मानता हो कि वह सब भगवान का है । हम सब गाते है ..."**अब सौंप दिया इस जीवन का सब भार तुम्हारे हाथो में** " पर क्या हम कभी मन बचन और कर्म से अपने आप को भगवान के हवाले सौंपते हैं ? एकर बा सच में सौंप कर परख लीजिये क्या हर्ज है ।

८. बन्दना भाव

अकरूर और भीष्मादि की भांति नमस्कार करना ही बन्दना भक्ति है । अपन समान यह अपने से छोटे गुनवान और चरित्रवान वेक्ति के संग भी यसा ही भाव होना चाहिये । अकरूर और भीष्मादि क्रिषा से उर्म और पद मे बड़े थे पर वै जानते थे की श्रीक्रिषणजी ईशवर हैं और यदपि नाते में वे उन से छोटे हैं, फिर भी वे पूजनीय हैं । इसलिये वे हमेशा गोविंदजी को बड़े प्रेम से नमस्कार किया करते थे ।

इस भक्ति में साधक अपने परमात्मा अर्थात् इष्ठदेव की मूर्ति के आगे साष्टाँग-डंडवत करता हुआ उन्हें सारे जगत के प्रणीमात्र में देखता है । भक्त का मन पवित्र और निर्मल होने के कारण वह कण-कण में अपने इष्ठदेव को देखता हुआ सब को प्रणाम करता रहता है । ईश्वर की प्राप्ति उसे सीग्र हो जाती है ।

९. अर्चनाभाव

भगवान के स्वरुप की मानसिक यह पवित्र धातू आदि की मूर्ति का गुण और प्रभाव सहित राजा अम्बरीश और राजा पृथु के भाँती पूजा करना, अर्चना भक्ति कहते हैं । इस भक्ति की शक्ति को दुरवासा और अम्बरीश की कथा में देखिये जहाँ दुरवासा का क्राध अम्बरीश का कुछ नहीं बिगाड़ सका । दुरवासा ने अपने अहंकार वश बिना किसी अपराध के अम्बरीशजी पर अपने क्रोध से उत्पन शक्ति द्वारा प्रहार किया । अम्बरीशजी भगवान नारायण के सुदर्शन चक्र द्वारा हर वक्त सुरक्षित रहा करते थे । जब दुरवासा की शक्ति नारायण जी के चक्र से टकराई तब सुदर्शन चक्र ने उस शक्ति पर उलटा आक्रमण किया और दुरवासा के पीछे दौड़ा । चक्र दुरवासा को पूरे ब्रह्ममाड में दौड़ाया आर उन की रक्षा हेतु त्रिदेव ने भी अस्वीकार कर दिया । भगवान विष्णु ने तो येसा कह दिया

भक्ति योग

कि "हे दुर्वासा ! मैं तो सदा अपने भक्तों के वश में रहता हूँ इस लिये तुम अपनी प्रार्स्चित हेतु उसी भक्त के पास जाओ जिस पर तुम ने अज्ञानता वश क्रोध किया है और उसी से अपनी भूल के लिये क्षमा प्राथना करो । भगवान ने यह सिद्ध कर दिया कि वे अपने भक्तों के वश में होते हैं ।

अर्चन भाव चाहे पूजा की सामग्री से किया जाये या चाहे मन की भावना से ।
निश्कपट और निश्काम भाव से की गई पूजा दोनो अवसथाओं में फलदायक होती हैं । मनोभाव से की गई अर्चना में सामग्री न होने पर भी भक्ति की स्थिति ऊँची मानी गई है । इस भक्ति में साधक अहंकार-रहित होकर अपने को प्रभूके आगे आत्म-समर्पन कर देता है ।

अब आगे की चरचा का विषय है ः

भक्ति की सक्ति तथा भक्ति से लाभ

भक्ति एक भक्त के हृदय को निर्मल कर देता है । ईर्ष्या, जलन-भाव और द्वेष-भाव, सब मिट जात है और इस के विपरीत हर कोई की सेवा करने से मन प्रफुलित्त होता है । परमसुख और परम शान्ति का अनुभव होता है । किसी भी प्रकार की चिंता नहीं रह जाती है । किसी से कोई डर या भय नहीं रहता । सभी तरह के झंझट्टें और मुसीबतें अपने-आप मिट जाते हैं । भक्त संसार की माया जाल से हमेशा के लिये मुक्ति पा लेता है, अर्थात जीते-जी मुक्ति की प्राप्ति ।

दास बन जाओ और भक्ति सहज में मिल जाएगी क्योंकि एक दास को सेवा भाव ही प्यारा लगता है । मान, बड़ाई, नाम, इ़ज्जत, यह सब तो दास-भाव में सब से पहले मिट जातें हैं । सब से छोटा बन कर जीने में बहुत आनन्द मिलता है क्योंकि न तो किसी से मान-बड़ाई पाने की इच्छा होती है और न कोई नाम या मान पाने की इच्छा होती है । बदले में खुद सबको मान और बड़ाई देते चलो । छोटा रहने में मन को कोई चोट भी नहीं पहुँता । सब में सियाराम को देखो तो सब उन्हीं के रूप दिखाई देंगे । सब से बड़ी बात तो ये है कि एक "**दास-भक्त**" भगवान को सब **भक्तों में से सब से प्यारा लगता है और उन के अन्नय-भक्तों में गिने जाता है ।** उदाहरण हैं - श्रीहनुमानजी हैं, माता शबरी, भीलों का राजा गुह आदि ।

भक्ति पा लेने के बाद, ज्ञान और वैराग तो स्वयं आ जाते हैं । भक्ति से ईश्वर की प्राप्ति होती है और हर पल सुनेहरा लगने लगता है । ईश्वर ने मानव का तन दिया है । यही एक ऐसा तन है जिस के द्वारा भक्ति की जा सकती है । तो फिर इसे मत गवाँओ और अपना परलोक सुधार लो ।

भक्ति योग

याद रहे कि देवता भी भक्ति नहीं कर पाते हैं और इसीलिये वे मानव के तन को सब से दुर्लभ मानते हैं। यही तो कारण है कि मानव तन सब योनियों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। र्स्वश्रेष्ठता मानव में तभी तक है जब तक मानव, मानव का कर्तव्य निभाता है। पर जब वह अपने कर्तब्यों से विमुक हो जाता है और जानवरों जैसे बर्ताव करने लगता है, तब र्स्वश्रेष्ठता नहीं रह जाती, और मानव जानवर से भी नीच अवस्था को प्राप्त होता है। मानव तन मोक्ष की सीढ़ी है। इसे पहचानो और भक्ति मार्ग में तुरन्त लग जाव।

भक्ति की कथा तो बहुत गहरी है। मैं ने तो बस थोड़ी सी झलक डाली है। इसे बखान करने के लिये तो बड़े बड़े महात्मा भी सकुचाते हैं ता फिर मैं क्या सुनाउगा। पर मुझे आशा है कि इस कथा से आप सब कुछ न कुछ अवश्य प्राप्त किये होगे।

हरि ॐ तत् सत् , जै राधे कृष्ण, जै सिया राम ॥

"प्रथम भक्ति कीर्तन सुकदेवमुनि। दूसरि शर्वण परिक्षित जस सुनि" ॥
ध्रुव प्रहलाद स्मरण करि जेहि विद्धि। ताहि देई हरि सब ऋद्धि सिद्धि ॥

४. पाद सेवन

चौथी भक्ति जहि विधि नर पावा। वेद पुराण सब ग्रन्थन गावा।
तन मन से प्रभू चरन्न सेवन। लक्ष्मी भरत सम सर्वस्व अर्पण ॥

५. दास भाव -

पंचम भक्ति, दास भाव से। लक्ष्मम हनुमान किये जैसे ॥
प्रभू की सेवा और कछु नाहीं। हर पल प्रभू अज्ञा मन माहीं ॥

६. सखा भाव

सखा भाव अर्जुन ने माना। अपने वस करि जिस ने कान्हाँ ॥
वेद पुराण हैं इसे बखाना। छटी भक्ति कियो सिद्ध प्रमाना ॥

७. निबेदन भाव

राजा बलि किये सर्वस्व अर्पण। सप्तम भगति नाम निवेदन ॥

भक्ति योग

८. बन्दना भाव और ९. अर्चनाभाव

दोहा : अष्ठमभाव प्रसीद करि, अकरूर भीष्म धनवान ।
नवम अम्बरीश पूजहिं, तन मन से भगवान ॥

हरि ॐ तत्त-सत्त

लेखक :
ठाकुर भीम सिहं